ओ३म्

‘महर्षि दयानन्द की आकस्मिक मृत्यु का कुप्रभाव उनके किन भावी कार्यों पर हुआ?’

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

ऋषि दयानन्द मारवाड़ की जोधपुर रियासत से आमन्त्रण मिलने पर वहां वैदिक धर्म के प्रचार के लिए गये थे। उन दिनों वहां महाराजा जसवन्त सिंह का शासन था और उनके अनुज कुवंर प्रताप सिंह थे। उनके एक अन्य बन्धु रावराजा तेजा सिंह भी थे। कुवंर प्रताप सिंह जी ने ऋषि दयानन्द को जोधपुर आकर वेदों के प्रचार का आग्रह किया था। महर्षि दयानन्द द्वारा जोधपुर जाने का निश्चय करने पर उनके अपने अंतरंग शिष्यों महाराजा नाहर सिंह, शाहपुरा राज्य व अजमेर के लोगों ने उन्हें जोधपुर न जाने या यदि वह जायें तो वहां खण्डन में सावधानी बरतने की सलाह दी थी। महर्षि दयानन्द ने उनको दी गई सलाह का प्रतिवाद कर असत्य के खण्डन को पूरी शक्ति से करने की बात कही थी। उन्होंने जोधपुर जाकर एक ओर जहां वैदिक धर्म की मान्यताओं का प्रचार किया वहीं उन्होंने महाराजा जोधपुर

के चरित्र विषयक अवगुणों का खण्डन भी किया। कहते हैं कि उन्होंने कहा था कि राजा तो सिंह वा शेर के समान होते हैं और वैश्यायें की उपमा उन्होंने कुतियों से दी थी। बताते हैं कि एक नन्ही भगतन नाम की स्त्री महाराजा की प्रिय दासी व वैश्या थी और अपनी राणियों की उपेक्षा व अनदेखी करते थे। महाराजा उस नन्ही भगतन वैश्या पर मुग्ध थे और उसे राज्य में अनेक अधिकार भी प्राप्त थे जिसका विपरीत प्रभाव राज्य संचालन व राज्य की जनता पर पड़ रहा था। महर्षि दयानन्द ने देशी राजाओं की वैश्याओं पर आसक्ति का कड़े शब्दों में खण्डन किया था। मुस्लिम मत की अवैदिक व अविवेकपूर्ण कुछ मान्यताओं का युक्ति व तर्क से भी समीक्षा की थी जिससे जोधपुर राज्य के प्रधान मंत्री मियां फैजुल्ला खां क्रोधित व लाल-पीले हो गये थे। उनके क्रोध से युक्त वचनों का महर्षि दयानन्द ने यथोचित प्रतिवाद भी किया था। कहते हैं कि मियां फैजुल्ला खां ने कहा था कि यदि जोधपुर एक मुस्लिम रियासत होती तो स्वामी दयानन्द इस प्रकार वैदिक धर्म का प्रचार व खण्डन-मण्डन नहीं कर सकते थे। ऋषि का उत्तर था कि यदि प्रचार में कोई बाधा पहुंचाई जाती तो वह दो राजपूतों की पीठ ठोक देते। ऐसी कुछ बातें वहां हुईं थी। इससे अनुमान होता है कि नन्ही भगतन और फैजुल्ला खां, उनके निकटस्थ कृपा पात्र व अपने लोगों सहित राज परिवार के कुछ लोग भी ऋषि दयानन्द के खण्डन से खिन्न व उग्र हो गये थे जिसका परिणाम एक गुप्त षडयन्त्र द्वारा उन्हें विषपान कराया गया। विषपान के उनके उपचार में भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लापरवाही की गई जिसका परिणाम 30 अक्तूबर, 2016 को दीपावली के दिन अजमेर स्थित भिनाय की कोठी में उनकी मृत्यु के रुप में सामने आया। देश और आर्यसमाज पर इसका प्रभाव यह हुआ कि उनके द्वारा किया जा रहा वैदिक धर्म का प्रचार अवरुद्ध हो गया और वेदभाष्य सहित नये नये विषयों का शंका समाधान, धर्म विषय पर चर्चायें तथा शास्त्रार्थ आदि सभी दैनन्दिन कार्य समाप्त हो गये। यदि विषपान न होता तो स्वामी जी की मृत्यु भी न होती और तब देश और विश्व को चारों वेदों का पूरा भाष्य मिल सकता था। अन्य भी कुछ नये ग्रन्थ जिनका अनुमान करना संभव नहीं है, वह भी अनेक विषयों पर उनसे प्राप्त होते।

महर्षि दयानन्द को जिस दिन विष दिया उस दिन व उससे पूर्व वह प्रमुख कार्य ऋग्वेद के सप्तम मण्डल का भाष्य कर रहे थे। विष के अगले दिन से उनका स्वास्थ्य इस योग्य नहीं रहा कि वह स्वास्थ्य लाभ के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य कर सकते। अतः यह कार्य स्थाई रूप से अवरुद्ध हो गया। यदि वह अवशिष्ट ऋग्वेद और उसके बाद सामवेद और अथर्ववेद का भाष्य भी पूरा कर लेते तो यह विश्व के इतिहास और साहित्य में बेजोड़ ज्ञान होता। शायद भारतीयों व विश्व के मनुष्यों का ऐसा प्रारब्ध नहीं था कि वह ईश्वर प्रदत्त वेदों के सम्पूर्ण यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर सकते। इसीलिए वह महर्षि दयानन्द कृत सम्पूर्ण वेदों के ज्ञान से वंचित रहे। ईश्वर की कृपा है कि ऋषि के अनेक अनुयायी विद्वानों ने चारों वेदों का हिन्दी वा संस्कृत दोनों भाषाओं में

भाष्य पूरा कर दिया। न केवल वेदों का ही अपितु सभी प्रमाणित उपनिषदों एवं दर्शनों के भाष्य सहित मनुस्मृति का भाष्य व मन्त्रानुवाद सहित विशुद्ध मनुस्मृति का प्रकाशन भी आर्यसमाज के विद्वानों वा ऋषि अनुयायियों ने सम्पन्न किया व कराया है। ऋषि भक्त आर्य विद्वानों द्वारा ऋषि शैली व सिद्धान्तों के अनुरुप वेदों का भाष्य करना असाधारण उपलब्धि है। अतः परमात्मा की दया व कृपा से ऋषि दयानन्द जी का जो कार्य असामयिक मृत्यु के कारण छूट गया था, वह भी ऋषि स्तर का तो न हो सका परन्तु अन्य रूप में पूरा अवश्य हो गया।

ऋषि दयानन्द को यदि विष न दिया जाता तो वह अपने अखण्ड ब्रह्मचर्य और अच्छे स्वास्थ्य के कारण दीर्घ काल तक जीवित रहते। देश-विदेश का भ्रमण कर सकते थे। देश-विदेश के विद्वानों से मिलकर संवाद कर सकते थे और उन्हें वैदिक मत और सिद्धान्तों से सहमत करा सकते थे। वह जहा जहां जाते, वहां नये आर्यसमाज स्थापित होते और आर्यसमाज का प्रभाव जो उनकी मृत्यु के समय था, उसमें काल क्रम के अनुसार बहुविध उन्नति व वृद्धि होती। हम यह भी बता चुके हैं कि स्वामी दयानन्द अनेक अन्य ग्रन्थों की रचना भी करते जिसका हम अनुमान भी नहीं कर सकते। उनकी असामयिक मृत्यु से हम उनके उन ग्रन्थों से भी वंचित हो गये हैं। उनके भावी जीवन के अनेकानेक अवसरों के अनेक चित्र भी हमारे पास होते जिससे हमें व भावी पीढ़ियों को प्रसन्नता होती। मृत्यु के समय स्वामी जी 58-59 वर्ष की आयु के थे। अब उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं थी कि उनके माता-पिता व भाई बन्धु आकर उन्हें अपने साथ उनकी जन्म भूमि टकारा ले जाने का आग्रह कर सकते थे। ऐसी स्थिति में मृत्यु न होने पर उसके कुछ बाद वह अपने जन्म के वास्तविक स्थान, माता-पिता व बन्धुओं के नाम व उनकी कुछ विस्तार से जानकारी दे सकते थे जो उनके अनुयायियों व शोधार्थियों के लिए विशेष उपयोगी होती। हमें यह भी अनुभव होता है कि 30 अक्तूबर, 1883 के बाद के उनके जीवन में अनेक पौराणिक विद्वानों से संवाद होते और हो सकता है उनमें से कुछ प्रतिभाशाली विशेष विभूतियां वैदिक मत को स्वीकार कर उनका शिष्यत्व ग्रहण करती।

स्वामी दयानन्द सच्चे और उच्च कोटि के सिद्ध योगी थे। यह सम्भव था कि यदि उनका कोई भक्त योग साधना समाधि आदि के अनुभवों पर ग्रन्थ लिखने का आग्रह करता तो वह इस कार्य को अवश्य पूरा करते। इस कार्य के सम्पन्न होने पर उनका यह कार्य संसार के साहित्य में एक अपूर्व ग्रन्थ हो सकता था। इससे भी हमारा देश व समाज वंचित हुआ है। स्वामी जी के मस्तिष्क में अनेक ऐतिहासिक तथ्य विद्यमान थे जिनको समग्रता से प्रस्तुत करने का अवसर उन्हें जीवन में नहीं मिला। यदि उन्हें बाद में अवकाश मिलता तो वह यह कार्य भी सम्पन्न कर सकते थे जिससे देश को बहुत लाभ होता। स्वामी जी का निधन अंग्रेजों के पराधीनता के काल में हुआ था। सन् 1857 में वह 32 वर्ष के युवा थे। देश की तत्कालीन धार्मिक व सामाजिक स्थिति से पूर्णतया परिचत व जागरूक थे। आशा की जाती है उन्होंने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। यदि भाग न भी लिया हो तो इससे जुड़ी अनेक स्मृतियां तो उनके मन व मस्तिष्क में थी हीं। यदि उनके जीवन काल में ही स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती तो उत्तर काल में वह बहुत सी ऐसी बातों का उद्घाटन भी कर सकते थे जिन्हें पराधीनता के कारण प्रस्तुत करना उनके लिए सम्भव नहीं था। इन व ऐसे अनेकानेक कार्यों व ज्ञान से देश व समाज वंचित हुआ है। हम इस लेख का और विस्तार न कर शेष बातों के लिए पाठकों के अपने अपने विवेक पर छोड़ते हैं। इतिहास में किन्तु परन्तु का कोई महत्व व स्थान नहीं होता परन्तु हानि व लाभ का मूल्यांकन तो कुछ कुछ किया ही जा सकता है व किया जाना चाहिये तभी हम भविष्य के प्रति सजग हो सकते है। जो गल्तियां हमारे पूर्वजों से उस समय हुईं हैं, उनसे शिक्षा भी ग्रहण कर सकते हैं। इसी के साथ हम इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

-मनमोहन कुमार आर्य

पताः 196 चुक्खूवाला-2

देहरादून-248001

फोनः09412985121